ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 472-474

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

दलित चेतना का वर्तमान परिप्रेक्ष्य

डॉ0 जितेन्द्र कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर– समाजशास्त्र विभाग, एस0 एम0 कालेज चन्दौसी, सम्भल, (उ0प्र0), भारत

Received- 10.07.2020, Revised- 12.07.2020, Accepted - 15.07.2020 E-mail: -jitendrakumar70372@gmail.com

सारांश : *दलित एक प्राचीन मराठी शब्द है, जिसका अर्थ "मैदान या टुकड़ों में टूटना है।" सामान्य रूप में दलित जनसंख्या का वह हिस्सा है, जो भारतीय जाति–उन्मुख समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ा है। दलित शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम मराठी समाजसुधारक ज्योतिबाफुले ने 19वीं सदी के अंत में किया। वास्तव में इस शब्द को आम स्वीकृति तब मिली जब सततर के दशक में दलित पैंथर संगठन अस्तित्व में आया। वर्तमान तक आते–आते यह शब्द अब एक आन्दोलन में परिणत होकर धीरे–धीरे विस्तार ले रहा है। दलित शब्द से यहां आशय जनसंख्या के उस शोषित व पीड़ित वर्ग से है जो परम्परागत आधार पर सदियों से सामाजिक–आर्थिक व राजैनतिक अधिकारों से वंचित रहा है। डा0 भीमराव अम्बेडकर के अनुसार दलित वर्ग में वे जातियां आती हैं जो अपवित्रकारी होती हैं। इसमें बुनकर, धोबी, मोची, भंगी, चर्मकार, हेला आदि आती हैं। जो रक्त व नातेदारी सम्बन्ध के आधार पर समाज में परम्परागत रूप से निम्न कार्यों को करवा रही है। इनमें से कई जातियां जो आमतौर पर किसी क्षेत्र में बहुसंख्या में होती है (जैसे चर्मकार व महार आदि) तथा अपने परम्परागत सेवा कार्यों के अतिरिक्त कृषि मजदूरी का कार्य भी करती है। इस प्रकार दलित वर्ग वह वर्ग है जो सविधान के अनुच्छेद 341 (1) तथा (2) के अन्तर्गत अनुसूचित जाति की श्रेणी में रखा गया है। देश में इस समय इनकी संख्या लगभग 15 करोड़ है तथा देश की जनसंख्या का यह लगभग सातवाँ भाग है। संविधान में इनकी अलग पहचान सामाजिक निर्योग्यतायें एवं आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने तथा इन्हें विशेष सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से निर्मित की गयी है।*

कुंजीभूत शब्द – दलित, सामान्य रूप, दलित जनसंख्या, जाति–उन्मुख समाज, निचले पायदान, सर्वप्रथम।

अतीत में दलित–इस दलित वर्ग के अतीत में झाँकने से ज्ञात होता है कि वैदिक कालीन संस्कृति के अन्तर्गत गुण, कर्म एवं स्वभाव की सुदृढ़ आधारशिला पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवसाि में ऊँच–नीच एवं छुआछूत जैसे संकीर्ण विचारों को कोई स्थान नहीं था। बल्कि इस कालखण्ड में व्यक्ति के वर्ण निश्चय उसके कर्म से होता था। इस समय अनेकानेक दृष्टांतों से पता चलता है कि किस प्रकार निम्न वर्णों के व्यक्तियों ने अपने कर्मों के आधार पर उच्च वर्ण को प्राप्त किया। रामायण रचयिता महर्षि वाल्मीक, ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता महर्षि आत्रेय एवं महाभारत के रचनाकार महर्षि वेदव्याव इत्यादि इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि समानता एवं कर्म के सिद्धान्त पर आधारित यह वर्णव्यवस्था उत्तर वैदिक काल तक आते–आते जन्म पर आध ाारित होकर जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गई। परिणामस्वरूप व्यक्ति–व्यक्ति तथा समूह–समूह के बीच जातीय विभेदों उच्चता–निम्नता व पवित्रता–अपवित्रता की अभेद्य दीवारें खड़ी की गई। इन्हीं असमानताओं एवं निर्योग्यताओं के फलस्वरूप विकास की परिणति दलितों और अनुसूचित जातियों के रूप में हुई। मध्यकाल में इन शूद्रों को अस्पृश्य कहा जाने लगा तथा कालान्तर में इन्हें पराधीनता, सामाजिक–सांस्कृतिक निर्योग्यताओं तथा अमानवीय शोषण का शिकार होना पड़ा। जहां सामाजिक क्षेत्र में ये जातियाँ एक दास के रूप में जीवन व्यतीत करने को बाध्य थी, वहीं ये आर्थिक अभावों से त्रस्त तथा राजनीतिक अधिकारों से पूर्णतया वंचित भी थी। समाज के सबसे निचली पायदान में होने के कारण इन्हें दलित की संज्ञा दी जाने लगी थी। मनु, याज्ञवलक्य, वशिष्ठ, बौधापन, आपस्तम्ब व महाभारत के शान्ति एवं वनपर्व के अनुसार शूद्रों का प्रमुख कर्तव्य द्विजातियों की सेवा करना एवं उनसे भरण पोषण पाना था। इन हिन्दू धर्मशास्त्रों ने शूद्रों को राजनीतिक एवं नागरिक अधिकारों के साथ–साथ बुद्धि एवं विद्या प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया था। मध्यकालीन भारतीय इतिहास पर विस्तृत दृष्टि डालने से पता लगता है कि इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है जहां शूद्रों के स्पर्श, वार्तालाप एवं देखने मात्र से ही नहीं, बल्कि परछाई मात्र से सवर्ण लोग अपवित्र हो जाते थे। इसी कारण धर्मग्रन्थों में शूद्र को न केवल अस्पर्श, बल्कि अदर्शनीय एवं विलगनीय तक कहा गया है। जाति व्यवस्था ने हिन्दू समाज में संगठन, अलगाव, असुरक्षा व अत्याचारों को जन्म दिया जिसने समानता सुव्यवस्था, स्वतंत्रता व सामाजिक संगठन के लिए स्थापित वर्ण–व्यवस्था के पारस्परिक सहयोग, संवाद एवं भ्रातृत्व की भावना को समाप्त कर दिया।

दलित वर्ग में चेतना का उभार– जहां तक दलित वर्ग में चेतना का प्रश्न है, इस संदर्भ में कहना न होगा कि स्वतन्त्रता आन्दोलन से पूर्व ही ब्रिटिश शासन काल में

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

पाश्चात्य शिक्षा एवं मूल्यों, विज्ञान के प्रचार–प्रसार, औद्योगिकरण, नगरीयकरण, आधुनिकीकरण एवं राजनीतिक आन्दोलन आदि के विकास के साथ–साथ ही दलितों के साथ भेदभाव एवं उनके पति उत्पीड़न के विरूद्ध एक नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। नर्मदेश्वर प्रसाद के अनुसार ''ब्राह्मणों की वर्णाश्रम व्यवस्था ने जिन लोगों को समाज से विलग कर दिया, वे बौद्ध हो गये और आगे चलकर उनमें से अधिकांश मुसलमान हो गये क्योंकि इस्लाम ने इन्हें समता का भ्रातृत्व भाव दिया और समाज में ऊँचा उठने का अवसर प्रदान किया।'' प्रमुख रूप से दलित सुधार आन्दोलन के प्रयास दक्षिण भारत में हुए इनके प्रणेता दक्षिण भारतीय चिंतक पेरियार रामास्वामी नायकर तथा महात्मा ज्योतिबाफुले थे। इनके पश्चात ही गोविन्द रानाडे, बाबा साहब अम्बेडकर, नानकदेव, स्वामी दयानन्द एवं कबीर इत्यादि समाज सुधारकों एवं महान संतो के नेतृत्व में अस्पृश्यता निवारण एवं दलित कल्याण कार्यों का शुभारम्भ हुआ। संविधान के अनुच्छेद 15, 16, 17, 38, 39, 46 इत्यादि के द्वारा दलितों की परम्परागत निर्योग्यताओं को दूर करने की संवैधानिक व्यवस्था की गयी है। 'अस्पृश्यता निवारण अधि ानियम 1955' तथा नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1976 पारित किया गया। ब्राह्मणवादी संस्कृति के विरूद्ध चलाये गये आन्दोलन ने दलितों के जीवन में उनके अस्तित्व के प्रति सम्मान की भावना अवश्य जगा दी है। यह नई चेतना ही आगे चलकर दलित समाज में परिवर्तन का आधार बनी। दलितों के मध्य आई इस चेतना ने उनके जीवन के कई पहलुओं को प्रभावित किया। देश के बाद यह दलित चेतना का उभार कई चरणों से होकर गुजरा है।

अम्बेडकर युग– डा0 बी0आर0 अम्बेडकर ने दलितों को शिक्षित बनने तथा संगठित होकर अपने अधिकार के लिए संघर्ष करने की शक्ति दी। सही अर्थों में डा0 अम्बेडकर का दलित आन्दोलन सुसंगत, जुझारू तथा चिंतनशील आन्दोलन था। उन्होंने ब्राह्मणवाद तथा सामन्ती संस्कृति के रूप में दलितों के दो दुश्मन चिन्हित किये।

जगजीवन काल– जगजीवन काल को हम डा0 अम्बेडकर के बाद दलित चेतना उभार का दूसरा चरण मान सकते हैं। हालॉकि उन्होंने प्रखरवक्ता तथा संसदीय जीवन सुख तक ही अपना अभियान सुरक्षित रखा। लेकिन जगजीवन राम की सत्ता भागीदारी ने दलितों को सत्ता के अर्थ का परिचय करा दिया।

वाम चिंतन– दलित समाज को नवजीवन देने में आजादी के बाद यह तीसरी शक्ति के रूप में उभरी। इस चिंतन ने भी डा0 अंबेडकर की तरह ही भारतीय सामन्तवाद व ब्राह्मणवादी जातिवाद की पहचान की तथा दलितों द्वारा आन्दोलन को गति देने में सार्थक भूमिका निभाई। बिहार, बंगाल, आन्ध्र प्रदेश तथा केरल प्रांतों में इसके सजीव उदाहरा है।

रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया– बाबा भीमराव अम्बेडकर ने कांग्रेस सरकार की नीतियों से हटकर गैर कांग्रेसी पार्टी की स्थापना करके दलितोत्थान में एक नया मील का पत्थर लगाया। लेकिन बाद में आर0पी0आई0व के सदस्य भी अम्बेडकर की मूलधारा से हटकर स्वार्थवाद की राजनीति के दलदल में फँसते चले गये। इसकी उपलब्धि 1964 का महाराष्ट्रीय भूमि आन्दोलन है।

नवबौद्धवाद– इस चिंतन ने दलितों के अंदर भौतिकवादी एवं बुद्धिवादी दृष्टिकोण को व्यापक एवं ताकतवर बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही दलितों में बौद्धिक चेतना, तर्क शक्ति तथा विवेकशीलता को आगे बढ़ाकर इस चिन्तन धारा ने दलितों की चैतन्यता में गुणात्मक परिवर्तन किया। इस चेतना से दलितों में किसी भी सामाजिक या राजनीतिक मुद्दे पर बहस करने की प्रवृत्ति का विकास हुआ।

दलित पैंथर– महाराष्ट्र का दलित पैंथर दलितों की समस्याओं के निदान को लेकर आज के नक्सलवादी युवकों की तरह यह संगठन आक्रामक रूप धारण करने वाला संगठन रहा है। समय के साथ हालाँकि यह संगठन नवबौद्धिस्ट दलित तथा गैरबौद्धिस्ट दलितों के बीच सामंजस्य नहीं बैठा पाया।

दलित लेखन चेतना का विस्तार– महाराष्ट्र के दलित लेखकों ने साहित्य विद्या में दलित साहित्य की पहचान बना देने में अहम भूमिका निभाई। वी0टी0 राजशेखर, अर्जुन डाँगले, दया पवार व शंकर राव खरात जैसे लेखकों की रचनाओं में जिस तरह की अभिव्यक्तियों ने सीान पाया है उसमें संपूर्ण दलित समाज को आन्दोलित करने की पूर्ण क्षमता है।

उत्तर भारत की दलित राजनीति– हाल ही में उत्तर भारत की एक राजनीतिक शक्ति के रूप में दलितों की पहचान बना देने वाली बहुजन समाजपार्टी की चर्चा किसी से छिपी नहीं है। भले ही काशीराम–मायावती के नेतृत्व में चल रहे राजनीतिक दल ने दलितों की सत्ता कायम करने के लिए समझौतावादी राजनीति का रास्ता अपनाया हो, लेकिन इतना जरूर है कि इस पार्टी ने उत्तर भारत के दलितों के बीच एक राजनैतिक चेतना का उभार पैदा किया है।

डरबन सम्मेलन– दक्षिणी अफ्रीका के डरबन शहर में 31 अगस्त से 7 सितम्बर 2001 तक चलने वाला यह सम्मेलन दलित संगठनों की चेतना की पराकाष्ठा के रूप में देखा जा सकता है। दरअसल यह सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों बीच नस्लवाल तथा असहिष्णुता के समकालीन रूपों से लड़ने तथा उनके उपाय एवं रणनीति बनाने के लिए बुलाया गया था। भारतीय दलित वर्गों एवं संगठनों का तर्क था कि भारतीय जाति व्यवस्था एवं उससे जुड़े तमाम मानवीय

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

भेदभाव के स्वरूप को भी अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर रखकर भारत सरकार से मुआवजे की मांग की जाय। हालांकि यह मांग वहां रखकर भले ही कोई त्वरित लाभ प्राप्त न हो पाया हो। मगर इससे दलित वर्ग के विस्तार एवं जागरूकता के स्तर का स्वतः ही आभास हो जाता है।

दलितों का भोपाल घोषणा पत्र अर्थात इक्कीसवीं सदी का दलित एजेन्डा—देश की आजादी के बाद यह देश का पहला दलित बुद्धिजीवी महासम्मेलन था जिसमें इन्होंने निजी क्षेत्र में आरक्षण की मांग उठाई। भोपाल में 12—13 जनवरी 2002 को चले सम्मेलन में स्वीकृत दस्तावेज को इक्कसवीं सदी का 'दलित एजेन्डा' घोषित किया गया है। सच्चाई यह है कि डा0 भीमराव अम्बेडकर तथा काशीराम के बाद दलित चेतना उभार का यह तीसरा पड़ाव कहा जा सकता है। इस घोषणा पत्र में अमेरिका को अपना आदर्श माना गया है। देश की आजादी के बाद देश मं संविधान इस आशा और विश्वास के साथ लागू किया गया था कि यहां स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के आधार पर एक जातिविहिन और वर्णविहिन समाज की स्थापना होगी। लेकिन विगत पांच दशकों में यह सम्भव नहीं हो पाया। इसके विपरीत दलित वर्ग ने सवर्णों से एक निश्चित दूरी बनती चली गयी। साथ ही जातिगत वर्ग चेतना ने आज दलितों को इस मुकाम पर लाकर खड़ा कर दिया है जहां भविष्य में दलितों का गैर दलितों के साथ सामंजस्य नजर नहीं आता। भविष्य के समाज को जातिगत संघर्ष से बचाने के लिए आवश्यक है कि इस दलित समस्या के समाधान की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। समाजशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते दलितों की मुक्ति एंव वर्तमान दलित चेतना के स्तर का संरक्षण करने के लिए जरूरी है कि ऐसे उपागम सुझाये जाये ताकि आंशिक रूप से ही सही, हम समाधन की ओर पहुंच सके। अम्बेडकर द्वारा प्रचलित बौद्ध विचारधारा के संरक्षण के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह दलितों को संगठित करने, आत्मसम्मान दिलाने, शक्ति व सामर्थ्य जुटाने एवं समानता व खुशहाली के लिए धर्म परिवर्तन करने का संकेत देती है। अम्बेडकर का विचार है कि बौद्ध धर्म ही ऐसा धर्म है जो देश व काल की सीमाओं से परे विज्ञापसम्मत है। बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार करना ही मानवता की सेवा है। जनवादी विचारधारा के अनुसार दलित समस्या की जड़ें आर्थिक संरचना में निहित है। जनवादी विचारधारा यह मानती है जब तक उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित नहीं होता, तब तक समाज में विषमता एवं शोषण बना रहेगा। गांधी का विचार था कि दलित समस्याओं के आर्थिक व राजनीतिक पहलुओं पर ध्यान तो देना चाहिए लेकिन उनके सामाजिक पहलुओं की अवहेलना नहीं की जानी चाहिए। इस गांधीवादी दृष्टिकोण का सबसे महत्वपूर्ण उपागम यह हे कि यदि सामाजिक बदलाव लाना है तो वह जोर जबरदस्ती से न लाकर अहिंसात्मक पद्धति से लाना चाहिए। सामाजिक सहमति के आधार पर सामाजिक परिवर्तन लाने में भले ही देर लगे, लेकिन उसका प्रभाव स्थायी होना चाहिए। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक व्यक्ति के विचार, दृष्टिकोण और सोचने के तरीके में परिवर्तन नहीं आता तब तक कानून और विधान बना देने से समाज को नहीं बदला जा सकता।

देखने में आ रहा है कि आज लोकतंत्र सामान्य तौर पर जाति और समुदाय में सिमट गया है। आज हम ब्राह्मण, बनिया, यादव पहले हैं, जबकि भारतीय बाद में। आजादी के 50 वर्षों के बाद भी हमारे अन्दर भारतीय होने का बोध नहीं पनप पाया। विगत दशकों में दलितों ने जो प्रगति की है उसे समाज का बाकी हिस्सा स्वीकार नहीं कर पाया। इस समस्या से निपटने के लिए जरूरी है कि जाति और सम्प्रदाय के नाम पर निकलने वाले पत्र—पत्रिकाओं को बन्द किया जाना चाहिए। अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाये। अर्थव्यवस्था को पुनः संगठित किया जाय। जाति विहिन समाज की स्थापना का लक्ष्य मुश्किल जरूर है, लेकिन असम्भव नहीं है। महात्मा बुद्ध, गुरू नानक एवं गांधी को जाति विहीन समाज की स्थापना करने में भले ही सफलता नहीं मिली हो। मगर वर्तमान में आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण एवं लचीली अर्थव्यवस्था के इस दौर में सच्चे संकल्प के साथ यह कार्य कहीं अधिक आसान है। आवश्यकता है पुरानी सड़ी गली व्यवस्था के विरूद्ध एक नई वैज्ञानिक सोच विकसित करके एक समतावादी समाज का निर्माण करने की।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अइयर, बी0आर0के0, अम्बेडकर मेमोरियल लेक्चर्स, नई दिल्ली, अम्बेडकर इन्सीच्यूट आफ सोशल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग, 1976.
2. अब्राहम एम0एफ0, माडर्न सोशियोलाजिकल थियरी, दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982.
3. देसाई, ए0आर0, सोसल बैक ग्राउण्ड आफ इण्डियान नेशनलिज्म, बाम्बे, पापुलर प्रकाशन, 1982.
4. सिंह, डा0 रामगोपाल, भारतीय दलित समस्याएँ एवं समाधान, म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।

*****